अनुबंधित श्रमिक

प्रवास और औपनिवेशिक नीति

आशुतोष कुमार

शर्तबंदी प्रथा के तहत विभिन्न द्वीपों में भारतीय कृषक मज़दूरों का प्रवसन औपनिवेशिक भारत की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसकी शुरुआत 1833 में 'दास-प्रथा' के उन्मूलन से उत्पन्न बाग़ान मज़दूरों की कमी को पूरा करने के लिए की गयी थी। 'गिरमिट' (अंग्रेज़ी के एग्रीमेंट का भोजपुरीकरण) के तहत उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में रोज़ी-रोटी की तलाश में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के विभिन्न अंचलों से लाखों की संख्या में लोग समुद्र पार के देशों में गये। शर्तबंदी के तहत किसानों को एक क़ानूनी क़रार करना होता था जिसमें उन्हें कम से कम पाँच वर्ष तक गन्ने के बाग़ानों में काम करना था और बदले में उन्हें बाग़ान मालिकों की तरफ़ से तय मज़दूरी, चिकित्सा सुविधा, आवास तथा न्यूनतम मूल्य पर राशन मिलता था। पाँच वर्ष का क़रार ख़त्म होने पर भारतीय किसान अपने देश वापस लौट सकते थे। दस वर्ष की अवधि के बाद उन्हें मुफ़्त लौटने की भी सुविधा थी। न लौट पाने की स्थिति में उन्हें उस द्वीप में बस जाने का अधिकार था।

औपनिवेशिक सरकार ने भारत में शर्तबंदी प्रथा को काफ़ी संगठित तौर पर विकसित किया था। युरोप के बड़े पूँजीवादी बाग़ान मालिकों की कम्पनियों को भारत में मज़दूर-भर्ती के लिए लाइसेंस

प्रदान किये थे जिनके कार्यालय मुख्यत: कलकत्ता एवं मद्रास में थे। इन कम्पनियों द्वारा इन शहरों में 'एजेंट' नियुक्त किये गये थे। ये एजेंट बहुधा भूतपूर्व औपनिवेशिक अधिकारी होते थे जिन्हें एक नियत मासिक वेतन मिलता था।

औपनिवेशिक प्रवास से संबंधित इस लेख में औपनिवेशिक राज्य की अनुबंधित-श्रम संबंधी नीतियों, क़ानूनों, और प्रावधानों पर एक समीक्षात्मक दृष्टि डाली गयी है। मार्क्सवादी इतिहासकारों तथा राष्ट्रवादियों की अवधारणाओं के विपरीत यह लेख औपनिवेशिक क़ानूनों में मज़दूरों के 'स्थान' की स्पष्ट शिनाख़्त करता है और इस प्रकार 'नयी दासता' से संबंधित तर्क की समीक्षा करते हुए एक वैकल्पिक दृष्टि की प्रस्तावना करता है।

प्रस्तुत लेख प्रवास के प्रश्न पर बने क़ानूनी उपायों, नियम-क़ायदों तथा भारत में उसके स्रोत-स्थान से जुड़े क़ानूनों पर विचार करता है। क़रार-प्रथा को लेकर इतिहासकारों के बीच प्रमुख बहसों में एक मुद्दा प्रवास-क़ानून में 'स्वतंत्रता' और 'अस्वतंत्रता' के स्तर का है। अकसर यह तर्क दिया गया है कि यह क़ानून क़रार पर दस्तख़त होने के बाद दस्तख़त करने वाले को क़रार से निकलने का कोई अवसर नहीं देता था। इस तरह प्रवास के क़ानून बनाते समय औपनिवेशिक सरकार आधिकारिक स्तर पर 'संरक्षक' की या 'कृपाकारी तटस्थता' की कोई भूमिका नहीं निभाती थी, बल्कि बलप्रयोगी श्रम-क़ानून बना कर बाग़ान के मालिकान (प्लांटर) की तरफ़दारी करती थी।[1] प्रवास-क़ानूनों के निर्माण पर विचार करने के लिए यह लेख विशेष रूप से कुछ ऐसी धाराओं पर ध्यान देता है जिनसे 'अस्वतंत्रता' की बू आती है, और साथ ही यह समझने का प्रयास करता है कि प्रवास का अनुबंध एक दीवानी अनुबंध न होकर एक दण्डमूलक अनुबंध क्यों होता था? प्रवास-क़ानून की कुछ मिसालों के आधार पर हमने यह दिखाने का प्रयास किया है कि गिरमिट-क़ानून किस तरह भर्ती करने वाले लोगों की धोखा-धड़ी के ख़िलाफ़ एक ढाल बन गया था।

श्रम-क़ानूनों का इतिहास

प्रवास के क़ानूनों की गहराई में गये बिना ह्यूज़ टिंकर ने तर्क दिया है कि प्रवास के क़ानून ब्रिटेन के मालिक-नौकर क़ानूनों की नक़ल थे जिनमें क़रार का कोई भी उल्लंघन एक अपराध होता था। इस तरह एक भावी प्रवासी जब क़रार पर दस्तख़त कर देता / देती थी तो उस पर एक तरह का फ़ौजदारी-क़ानून लागू होता था जिसमें क़रार का कोई उल्लंघन दण्ड का आधार होता था। दूसरे शब्दों में, 'अस्वतंत्रता' प्रवास के क़रार की एक बुनियादी विशेषता होती थी और यह क़रार तमाम मज़दूरों को दासता की हालत में पहुँचा देता था। टिंकर के बाद दूसरे विद्वानों ने भी गिरमिट तथा कामगारों से संबंधित दूसरे अनुबंधों के संदर्भ में भी, 'साम्राज्य के क़ानूनी बलप्रयोग' के तर्क दिये हैं। विली फ़ोर्ब्थ, एमी स्टैनले और क्रिस्टोफ़र टोम्लिस जैसे क़ानून के इतिहासकारों ने यह बात कही है कि उन्नीसवीं सदी के श्रम-क़ानून उजरती मज़दूरों की अधीनता को बढ़ावा देते थे, ग़रीबी-राहत पर कठोर शर्तें लगाते थे, और कार्यस्थल पर दुर्घटना की स्थिति में मददगार साबित नहीं होते थे। इसके अलावा, यह तर्क भी दिया जाता है कि आवारगी-क़ानून बेरोज़गारों को काम के लिए मजबूर करते थे। इन विद्वानों की नज़र में राज्य, कम से कम मज़दूरी दे कर काम लेने के मामले में, मालिकों की तरह-तरह से मदद करता था और मज़दूर को सौदेबाज़ी का कोई अवसर नहीं देता था। ब्रिटेन और अमेरिका में उन्नीसवीं सदी के दौरान उजरती मज़दूरी की पड़ताल करते हुए रॉबर्ट जे स्टाइनफ़ेल्ड ने तर्क दिया था कि मज़दूरी के क़रार 'उल्लंघनों पर कठोर उपायों के ज़रिये लागू किये जाते थे' ... ब्रिटेन में क़ैद और अमेरिका में मज़दूरी की ज़ब्ती के ज़रिये।[2] गिरमिट को 'अस्वतंत्र' श्रम के रूप में पेश करते हुए

---

[1] प्रभु महापात्र (2005), और बसुदेव मँगरू (1987).

[2] रॉबर्ट जे स्टाइनफ़ेल्ड (2001).

स्टाइनफ़ेल्ड ने कहा है कि मज़दूरी के क़रार लागू करने के लिए मालिकान शारीरिक बलप्रयोग का सहारा भी लेते थे। उन्होंने दिखाया है कि उन्नीसवीं सदी के दौरान ब्रिटेन में उजरती मज़दूरी भी, जिसे जबरिया भी कहा जा सकता था, 'अस्वतंत्र' थी। वे कहते हैं कि 'सामाजिक, वैधानिक या राजनीतिक प्रथा से स्वतंत्र न तो मुक्त श्रम का कोई अस्तित्व होता है और न बलात् श्रम का, बल्कि इसके फ़ैसले उनसे जुड़े हुए होते हैं कि श्रम-संबंधों में किस तरह का दबाव बलात् श्रम को जन्म देगा और किस तरह का दबाव इसे जन्म नहीं देगा।'[3]

औपनिवेशिक भारत के श्रम-क़ानूनों पर विचार करते हुए पीटर रॉब को भारतीय श्रम-संबंधों में तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्व दिखाई पड़े। पहला, बिचौलियों (बाबुओं, मेटों, मिस्त्रियों) की भूमिका, जो मज़दूरों को नियंत्रित करते थे। दूसरे, श्रम-बाज़ार में जातिगत और धार्मिक पहचानें। तीसरे, निर्भरता की मुसीबत। उनकी राय में इन बातों के कारण औपनिवेशिक राजसत्ता के लिए श्रम संबंधों को प्रभावित करना मुश्किल हो जाता था और इसलिए राजकीय अधिनियम भारत में सफल नहीं रहे।[4] माइकेल एंडरसन ने उन्नीसवीं सदी के भारत में श्रम के नियमन के क़ानूनी ढाँचों पर एक अलग राय पेश की है। उनका कथन है कि भारत में उन्नीसवीं सदी के श्रम-क़ानून मज़दूरों के कल्याण को राज्य के सरोकार के रूप में मान्यता देते थे।[5] प्रभु महापात्र ने ब्रिटिश भारत में विभिन्न श्रम-क़ानूनों की समीक्षा की है। उनका कहना है कि आरम्भिक श्रम-अधिनियमों (1814-60) में 'मालिक-नौकर क़ानून बहुत कुछ उस क़ानूनी-सांस्कृतिक बोझ के हिस्से थे जिसे अंग्रेज़ अपने साथ लिए फिरते थे।'[6] इसलिए भारत में काम के संबंध में जिस तरह की क़ानूनी संस्कृति लागू और विकसित की गयी, उसमें कामगारों द्वारा क़रार का उल्लंघन करना एक अपराध बन गया। असम के बाग़ान में श्रम-क़ानूनों के संदर्भ में महापात्र ने तर्क दिया है कि 'औपनिवेशिक राजसत्ता ने विशेष श्रम-क़ानूनों की एक शृंखला लागू करके (मज़दूरों को) मजबूर कर दिया और जी-हुजूरी की एक व्यवस्था को संस्थागत रूप दे दिया।'[7]

हाल में रेचल स्टर्मन ने बीसवीं सदी में अंतर्राष्ट्रीय श्रम-अधिकारों के पीछे कार्यरत विचारों की छानबीन करते हुए तर्क दिया है कि क़रार-प्रथा को संचालित करने वाला क़ानून बीसवीं सदी में अंतर्राष्ट्रीय श्रम-अधिकारों का केंद्रीय विषय बन गया। संचालन के बुनियादी विचार और रूप अंतर्राष्ट्रीय श्रम-अधिकारों से जुड़े हुए हैं। वे क़रार-प्रथा के नियमन में निहित हैं। उनकी राय में जाँच-पड़ताल और हस्तक्षेप का एक पूरा दायरा श्रमिकों की मनुष्यता को सिर्फ़ सुरक्षित ही नहीं बल्कि सुनिश्चित भी करता था, इसलिए क़रार-प्रथा के संचालन की व्यवस्था आधुनिक श्रम-अधिकारों के संदर्भ में अग्रदूत-समान बन गयी।[8] यह अध्याय इतिहास-लेखन की इन विभिन्न धाराओं पर विचार करते हुए तर्क देता है कि क़रार-प्रथा और उससे जुड़े क़ानून दोनों पक्षों— मज़दूर और मालिक— का ध्यान रखते थे। इस व्यवस्था का यह एक अनोखा चरित्र था।

आरम्भिक नियम-क़ायदों का निर्माण

1834 में जब क़रार-प्रथा का आरम्भ हुआ तो उसके नियमन के लिए जल्दी ही नियम-क़ायदे और क़ानून बनाए गये। भारतीयों के गिरमिट का आरम्भ तब हुआ जब अगस्त, 1834 में 39 क़ुलियों के एक दल ने अपने आपको कलकत्ता के मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया और मॉरीशस के गन्ना बाग़ान में काम करने के

[3] रॉबर्ट जे स्टाइनफ़ेल्ड (2003) : 897.
[4] पीटर रॉब (1993), 'इंट्रोडक्शन : मीनिंग्ज़ ऑफ़ लेबर इन इंडियन सोशल कांटेक्स्ट'.
[5] ऐंडरसन, माइकेल (1993) : 91.
[6] प्रभु महापात्र (2005), वही.
[7] उपरोक्त : 20.
[8] राचेल स्टर्मन (2014) : 1439-1465.

लिए पाँच साल के एक क़रार पर दस्तख़त किये।[9] उन दिनों न तो इसके लिए नियम-क़ायदे थे और न ही अपंजीकृत प्रवासियों को ले जाने पर किसी दण्ड का प्रावधान था। अगस्त, 1834 और मई, 1837 के बीच कम से कम सात हज़ार प्रवासी कलकत्ता से मॉरीशस जा चुके थे। इनमें से लगभग आधे पहाड़ी क़ुली, यानी कि ढाँगर, कोल और संथाल थे और लगभग दो सौ स्त्रियाँ थीं। नयी व्यवस्था के नियमन के लिए और समुद्र के रास्ते भारत छोड़ने वाले मुल्की लोगों की देखभाल के लिए एक विधि आयोग बनाया गया। इस आयोग की रिपोर्ट के बाद 1837 का अधिनियम सात (एक्ट-VII) अस्तित्व में आया।[10] इस क़ानून के अनुसार :

- प्रेसीडेंसी (फ़ोर्ट विलियम से संचालित बंगाल प्रेसीडेंसी) के गवर्नर के आदेश के बिना बाहर काम करने के लिए किसी भी प्रवासी को जहाज़ पर नहीं चढ़ाया जाएगा। (ज़ाहिरा तौर पर इसके कारण बंगाल से मद्रास जाना भी वैसे ही था जैसे किसी ऐसे उपनिवेश पर जाना जो भारत सरकार के अधीन न हो।)
- परमिट पाने के लिए परमिट देने के अधिकार से सम्पन्न किसी अधिकारी के सामने दोनों पक्षों का अनुबंध का ज्ञापन लेकर हाज़िर होना ज़रूरी था। (सेवा की प्रकृति, शर्तों और मज़दूरियों को स्पष्ट करने वाले इस ज्ञापन का अंग्रेज़ी में और 'मुल्की' व्यक्ति की भाषा में होना आवश्यक था, या फिर किसी ऐसी भाषा में जिसे वह समझता हो।)
- पाँच साल बाद इस क़रार पर विचार करना आवश्यक था, और उस बंदरगाह पर वापसी का प्रावधान भी था जहाँ से प्रवासी सवार हुआ था।
- अधिकारी को अख़्तियार था कि दोनों पक्षों की पड़ताल कर सके, 'मुल्की' को अनुबंध की शर्तें समझा सके और अगर वह संतुष्ट हो तो अनुबंध के ज्ञापन का अनुमोदन कर सके।
- अगर किसी जहाज़ पर 20 से अधिक प्रवासी सवार होने वाले हों तो उनके लिए समुचित 'आवास,' भोजन और दवा-इलाज सुनिश्चित करने के लिए उस अधिकारी को क़दम उठाने का अधिकार था। ये अगर संतोषजनक न हों तो परमिट न देने का विधान था।[11]
- प्रवासियों का एक रजिस्टर रखना आवश्यक था, जिसमें प्रवासियों के नाम, क़रार की मुद्दत, परमिट की तारीख़, गंतव्य-स्थल और जहाज़ के उल्लेख हों।
- किसी जहाज़ का मालिक अगर नियम का हनन करे तो परमिट के बिना सवार होने वाले हर 'मुल्की' के लिए दो सौ रुपये जुर्माना या तीस दिन के कारागार का हुक्म दिया जा सकता था।
- कलकत्ता के पुलिस सुपरिंटेंडेंट को परमिट देने वाला अधिकारी नियुक्त किया गया था और उसके मार्गदर्शन के लिए कुछ नियम बनाए गये थे।[12]

प्रवास की क़रार-प्रथा अभी लागू ही हुई थी कि दास-प्रथा विरोधी संगठनों ने इसका विरोध आरम्भ कर दिया। उनका कथन था कि यह 'दास-प्रथा की एक नयी व्यवस्था' थी और उस कुत्सित हो चुकी व्यवस्था के अधिकांश दुरुपयोगों को जारी रख रही थी। अग्रणी उन्मूलनवादी लॉर्ड ब्रोगम ने

---

[9] गवर्नमेंट जनरल डिपार्टमेंट के सचिव एच प्रिंसेप के नाम कलकत्ता के चीफ़ मजिस्ट्रेट मैकफ़र्लन का 10 सितम्बर, 1834 का पत्र, आर ऐंड ए 341, मॉरीशस राष्ट्रीय अभिलेखागार (आगे से : मा रा अ) : 164-166.

[10] भारत से कुली-प्रवास के बारे में जियोगेगेन रिपोर्ट, आगे से : जियोगेगेन रिपोर्ट, ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स, (आगे से पी.पी.), 1874 (314) : 2 देखें.

[11] यही दस्तावेज़ जहाज़ के डेक पर राशन की मात्रा भी बताता है : प्रतिदिन चावल 14 छटाँक, दाल 2 छटाँक, घी या तेल आधा छटाँक, नमक चौथाई छटाँक, प्याज़ आधा छटाँक, तम्बाकू 1 छटाँक. यहाँ दिलचस्प बात यह है कि जहाँ खाने के तम्बाकू को (जिसे पूर्वी उत्तर प्रदेश में सुर्ती और बिहार में खैनी कहा जाता है) और जिसे पान वाला चूना मिलाकर मुँह में दबा लिया जाता है. इससे ख़ून में निकोटिन का 'अबाध प्रवाह' होता है. इसे 'राशन' में शामिल किया गया था, वहीं सब्ज़ियों का कोई प्रावधान नहीं था. पिसी हुई धनिया को सूची से बाहर रखा गया था और मसालों के नाम पर सिर्फ़ हल्दी होती थी.

[12] 1837 के प्रवास-क़ानून सात के तहत अनुबंध की प्रति के लिए देखें, कुमार (2017).

उपनिवेशों में भारतीय मज़दूरों के 'निर्वासन' के ख़िलाफ़ एक आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभायी।[13] ज़ोरदार विरोध और आलोचना झेलते हुए ब्रिटिश सरकार ने 22 अगस्त, 1838 को समस्त प्रवास को ही ठप कर दिया और उन कथित दुर्व्यवहारों की जाँच शुरू करा दी जो पिछले चार बरसों के दौरान भारतीयों के साथ किये गये थे।[14] टी. डिकेंस, जेम्स चार्ल्स, डब्ल्यू एफ़. डाउसन, रसमय दत्त, जे.पी. ग्रांट और मेजर ई. आर्चर इस समिति के सदस्य थे और एक भारी विवाद के बाद उन्होंने 14 अक्तूबर, 1840 को अपनी रिपोर्ट जमा की जिस पर केवल तीन सदस्यों, डिकेंस, चार्ल्स और दत्त ने हस्ताक्षर किये थे।[15] इस भारी-भरकम रिपोर्ट में कहा गया था कि इस व्यवस्था में बहुत कुछ दुर्व्यवहार किया जा रहा था। उन्होंने कहा कि 'बहुत सी मिसालों में प्रवासियों को छल और बल के सहारे फँसा लिया जाता था और व्यवस्थित ढंग से उनकी लगभग छह माह की मज़दूरी मार ली जाती थी; कहने के लिए उनको यह मज़दूरी दी तो जाती थी लेकिन वास्तव में इस यातायात में लगे लुटेरे चालक दल के बीच कमोबेश अपारदर्शी बहानों से बँट जाती थी।'[16] कारर्वाई के शुरुआती चरण में ही चौथे सदस्य, मेजर आर्चर युरोप चले गये। पाँचवें सदस्य, डब्ल्यू एफ़. डासन स्वयं ही श्रमिकों के निर्यात में लगे एक कारोबारी थे। समझा जा सकता है कि सभी प्रकार के प्रवास पर पाबंदी जारी रखने के पक्ष में बहुमत के विचार से वे सहमत नहीं थे और उन्होंने अलग से असहमति की एक टिप्पणी दर्ज कराई थी। रिपोर्ट का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए समिति के छठे सदस्य जे.पी. ग्रांट ने यह लिखा :

> इसलिए मेरा निष्कर्ष यह है कि, जहाँ तक हमें पता है, हमारे उपनिवेशों के लिए भारतीय श्रमिकों के निर्यात से जुड़ी समस्त बुराइयाँ आकस्मिक हैं और अच्छे नियम-क़ायदे बनाकर भविष्य में इन्हें रोका जा सकता है; कि मुक्त प्रवास के असीम प्रत्यक्ष लाभ हैं जबकि अप्रत्यक्ष लाभों की गणना ही नहीं की जा सकती, और यह कि फलस्वरूप भारत से मुक्त प्रवास से उपनिवेशों में अभी तक झेली गयी बुराइयों को दोबारा सामने आने से रोकने की मुनासिब उम्मीद की जा सकती है।[17]

ब्रिटिश संसद में 'कलकत्ता कमेटी' का प्रस्ताव 118 के मुक़ाबले 24 वोटों से हार गया। 22 मार्च, 1842 को कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स ने भारत के लिए एक क़ानून का काग़ज़ भेजा। संचालन के प्रश्न को भारत सरकार के हवाले करते हुए उसमें समुचित सावधानियों की व्यवस्था की ज़रूरत बताई गयी थी ताकि 'भारत की जनता के कुछ वर्गों को अपने श्रम के मुक्त नियंत्रण का अधिकार देकर उनके लाभ को बढ़ावा देने की परियोजना को पतित होकर उनको हानि पहुँचाने से' रोका जा सके। उसने मौजूदा पाबंदी में ढील दिये जाने की सूरत में क़ानून के क्रियान्वयन पर 'गहरी नज़र' रखे जाने का आग्रह किया।[18]

दो दिसम्बर को भारत में 1842 का क़ानून पंद्रह पारित हुआ जिसमें, अन्य बातों के अलावा, मॉरीशस सरकार को कलकत्ता, मद्रास और मुम्बई में एक एजेंट और मॉरीशस में एक प्रोटेक्टर नियुक्त

---

[13] जियोगेगेन रिपोर्ट : 5 देखें.

[14] तालिका 3.1

उपनिवेश	पुरुष	स्त्रियाँ	बच्चे	योग
मॉरीशस	7,239	100	72	7,411
ब्रिटिश	407	7	10	424
बोर्बन	60	--	--	60

स्रोत : जियोगेगन रिपोर्ट : 4.

[15] टी. डिकेंस और जे.पी. ग्रांट बड़े प्लांटर थे और गन्ने की काश्त के लिए उन्हें उत्तर भारत में, ख़ासकर गोरखपुर में, जंगलात की बड़ी-बड़ी ज़मीनें आबंटित की गयी थीं. शाहिद अमीन (1984) : 30 देखें.

[16] पी.पी. (1841), सत्र 1 (45), डिकेंस कमेटी की रिपोर्ट. पी.पी., 1841 सत्र 2 (287), होम प्रोसीडिंग्स (आगे से : हो प्रो), एमिग्रेशन, ए प्रोग्स 15-20, 4 नवम्बर, (1840), भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार भी देखें.

[17] पी.पी. (1841), सत्र 1 (427), कुली-निर्यात में हो रहे दुरुपयोगों के बारे में जे.पी. ग्रांट की टिप्पणी, अनुच्छेद-120 : 30 देखें.

[18] कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स का डिस्पैच, जियोगेगेन रिपोर्ट में : 10-11 पर उद्धृत.

करने की अनुमति दी गयी थी। क़ानून-इक्कीस (1843) के दो महत्त्वपूर्ण भाग थे। भाग-एक में प्रवासियों की संख्या में सम्भावित कमी का रोना रोया गया था और स्त्रियों के अनुपात को बढ़ाने की ज़रूरत बतलाई गयी थी। इसमें प्रवास को एक जनवरी, 1844 से कलकत्ता बंदरगाह तक सीमित कर दिया गया था। भाग-दो गवर्नर जनरल को प्रवासियों के लिए कलकत्ता में एक प्रोटेक्टर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया था, और इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि कोई भी प्रवासी एजेंट के प्रमाणपत्र के बिना, जिस पर प्रोटेक्टर ने भी हस्ताक्षर किये हों, जहाज़ पर नहीं चढ़ेगा।[19] 1844 के क़ानून इक्कीस ने श्रमिकों को कलकत्ता और मद्रास से जमैका, त्रिनिदाद और ब्रिटिश गुयाना जाने की भी इजाज़त दी। इसके अनुसार गन्ना के टापुओं के लिए जाने वाले हर जहाज़ पर प्रवासियों में 12 प्रतिशत स्त्रियों का होना आवश्यक था। 1864 तक बहुत से ब्रिटिश और अन्य उपनिवेशों को भारत से कुली श्रमिकों के आयात की अनुमति दी जा चुकी थी। ये थे मॉरीशस, ब्रिटिश गुयाना, त्रिनिदाद, जमैका, सेंट लूशिया, ग्रेनाडा, सेंट क्रोइक्स, रीयूनियन (बोर्बन), नेटाल और सेंट किट्स।

भारतीय प्रवास के इतिहास में 1864 एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। पहली बार ऐसा हुआ कि औपनिवेशिक सरकार ने उपनिवेशों के लिए भारत से क़रारबंद मज़दूरों के प्रवास को एक व्यवस्थित रूप दिया, और मौजूदा क़ानूनों को मिलाकर 1864 का व्यापक क़ानून-तेरह बनाया गया। इस क़ानून की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार से थीं :

- प्रवास की एक समरस और सामान्य व्यवस्था के लिए विभिन्न क़ानूनों का एकीकरण। विशेष रूप से अपहरण या बहलावे-फुसलावे को या अनिच्छित प्रवास को भारतीय दण्ड संहिता के दायरे में लाकर उनको रोकने के उपाय।
- पंजीकरण की एक व्यवस्था द्वारा श्रमिकों की भर्ती में धोखाधड़ी को रोकने का प्रावधान। हर भर्ती किये गये मज़दूर को पंजीकरण के लिए एक मजिस्ट्रेट के सामने ले जाना आवश्यक। पंजीकरण से पहले कलकत्ता के मजिस्ट्रेट द्वारा भर्ती किये गये लोगों से क़रार के बारे में उनकी समझ और उनको पूरा करने की तत्परता के बारे में सवाल करना। संतोषजनक छानबीन के बाद ही क़ुलियों को डिपो भेजा जाना। डिपो के लिए भी समुचित नियमन होना आवश्यक। किसी एजेंट या उसके मातहतों के द्वारा इनमें से किसी भी नियम को तोड़े जाने पर दण्ड का प्रावधान।
- पहली बार प्रवासी की एक क़ानूनी परिभाषा देना और उनके प्रोटेक्टर के कर्तव्यों का वर्णन। प्रोटेक्टर का स्थानीय शासन का एक पूरावक़्ती मुलाज़िम होना।

उपनिवेशों में प्रवास के कुछ एजेंटों ने विधेयक की तैयारी के चरण में उसकी कुछ धाराओं पर आपत्ति की। धारा-20 एजेंटों के लिए सबसे अधिक हानिकारक थी। विधेयक के पहले मसविदे में इस दफ़ा के अनुसार :

> अगर चिकित्सा अधिकारी यह प्रमाणपत्र दे कि एक मज़दूर विशेष ने जहाँ काम करने के वास्ते जाने के लिए क़रार किया है वहाँ जाने की अनुमति उसका स्वास्थ्य नहीं देता, तो प्रवास का प्रोटेक्टर या तो प्रवास के जिस डिपो में वह मज़दूर रखा गया है उसके एजेंट को आदेश देगा कि वह उसे फ़ौरन वहाँ वापस भेजे जहाँ उसको पंजीकृत किया गया था, या फिर प्रवास के एजेंट को मज़दूर को उतनी रक़म देने का आदेश देगा जो प्रोटेक्टर की समझ में उसकी वापसी के लिए आवश्यक हो, और अगर ऐसा आदेश दिया गया है तो प्रवास का एजेंट किसी भी ग़ैर-मुनासिब देरी के बिना मज़दूर को वापस वहाँ भेजेगा या भिजवाएगा।
>
> उपरोक्त रक़म की अदायगी के बारे में प्रोटेक्टर के हुक्म की तामील में प्रवास के एजेंट के चौबीस घंटे तक नाकाम रहने की सूरत में प्रोटेक्टर के लिए उतनी रक़म मज़दूर को देना विधिसंगत होगा, और प्रोटेक्टर द्वारा प्रवास के उस एजेंट से उतनी रक़म अदायगी की तारीख़ से छह प्रतिशत ब्याज के साथ

[19] उपरोक्त : 11.
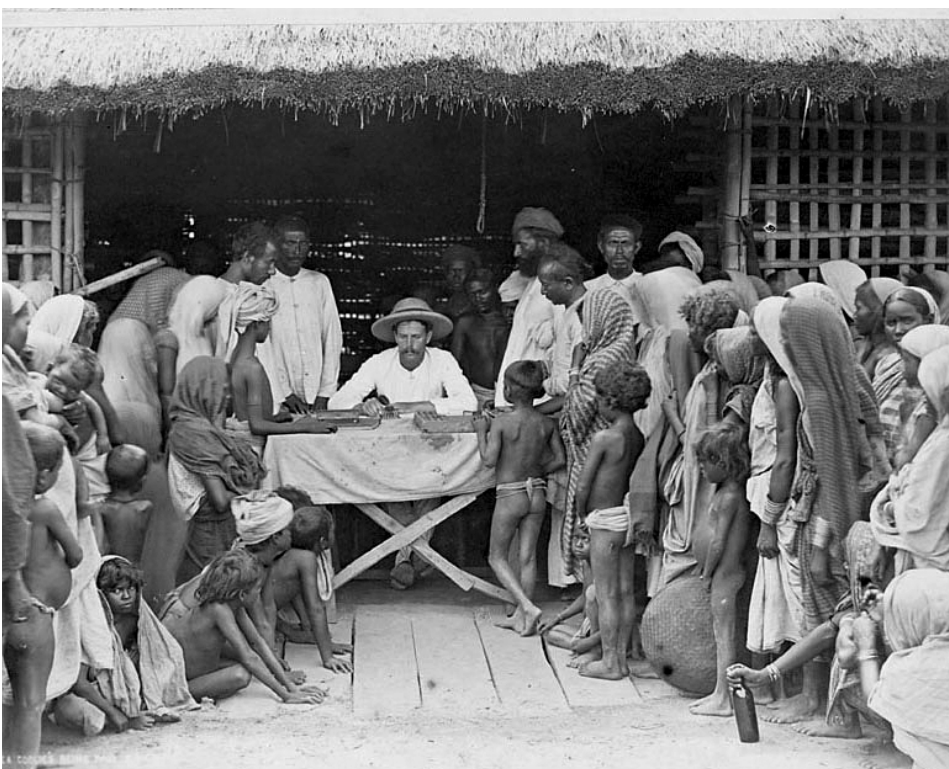
वसूल की जाएगी, जिसकी नाकामी के सबब यह रक़म दी गयी है, और इस रक़म को प्रवास के उस एजेंट को दी गयी रक़म माना जाएगा, और ऐसे भी मुआमले में कोई भी अदालत आगे इसका कोई सुबूत नहीं माँगेगी सिवाय इसके कि प्रोटेक्टर ने प्रवास के एजेंट के लिए उपरोक्त आदेश दिया था और यह कि प्रवास का एजेंट उस हुक्म की तामील में चौबीस घण्टे तक नाकाम रहा।

अगर कोई मज़दूर चिकित्सा अधिकारी की राय में अपने स्वास्थ्य की दशा के कारण वहाँ की यात्रा करने में असमर्थ है जहाँ उसको पंजीकृत किया गया था, तो प्रवास के एजेंट द्वारा या उसके ख़र्च पर वहाँ भिजवाए जाने के अलावा उसे डिपो में उतने समय रहने का और प्रवास के एजेंट से या उसके ख़र्च पर भोजन, वस्त्र और आवास पाने का अधिकारी होगा जितने समय के लिए प्रोटेक्टर की तरफ़ से अन्यथा आदेश दिया गया हो।[20]

इस धारा पर आपत्ति करते हुए एजेंटों ने मसविदा समिति को यूँ लिखा था :

हमें यह पढ़कर बहुत आश्चर्य हुआ कि प्रोटेक्टर को अधिकार दिया गया है कि वे प्रवासियों की देश-वापसी के लिए अपनी इच्छानुसार उनको धन दिये जाने का आदेश हमें दे सकें और अगर हम न दें तो हमसे वसूल करें। हमें लगता है कि यहाँ हमारे बारे में जो संदेह और अविश्वास व्यक्त किया गया है वह एकदम अनुचित है, और यही बात इस विधेयक के दूसरे बहुत से भागों के बारे में सही है जिनमें प्रोटेक्टर को एजेंट से पहल कराने को कहा गया है। अगर प्रोटेक्टर के डण्डे के बिना इस तरह का स्पष्ट और स्वाभाविक कर्तव्य एजेंट को नहीं सौंपा जा सकता तो एजेंटों के रूप में हमारी स्थिति पूरी तरह तुच्छ हो जाती है।

[20] लेजिस्लेटिव होम (1864), क़ानून सात से संबंधित काग़ज़ात, भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, ज़ोर हमारा. इस फ़ाइल में उपरोक्त क़ानून से संबंधित बहुत सारे काग़ज़ात हैं जो उससे जुड़े विभिन्न विभागों, उपनिवेशों और अधिकारियों से प्राप्त हुए थे. इस लम्बे उद्धरण को छोटे-छोटे अनुच्छेदों में तोड़ दिया गया है.

> संशोधित विधेयक जब पहले-पहल कौंसिल में पेश किया गया था तो इस नुक़्ते पर उसके उद्देश्यों और कारणों का वक्तव्य यह था कि प्रवासी की मुक्त इच्छा के बारे में प्रोटेक्टर अब कोई छानबीन नहीं करेंगे, कि विधेयक ने जाँच की ज़िम्मेदारी स्थानीय मजिस्ट्रेटों को दी थी। मजिस्ट्रेट की जाँच के बाद और प्रवासी को कलकत्ता लाने के लिए भारी रक़म ख़र्च किये जाने के बाद उसे क़रार तोड़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। *यह विधेयक किसी भी तरह इच्छुक प्रवासियों की बेइमानियों से उपनिवेशों को सुरक्षा प्रदान नहीं करता* (ज़ोर हमारा)।[21]

बहस के बाद आख़िरी मसविदे में प्रवासियों के इनकार के बारे में एक नयी धारा जोड़ी गयी। 1864 में जो क़ानून बना उसकी धारा-44 के अनुसार :

> अगर कोई प्रवासी, प्रवास के एजेंट के पुकारे जाने के बाद, उचित और पर्याप्त कारण के बिना जहाज़ पर चढ़ने से इनकार करता है या उसे अनसुना करता है तो ऐसे प्रवासी को उसकी इच्छा के बिना जहाज़ पर चढ़ने के लिए मजबूर करना या उसे उसकी इच्छा के बिना डिपो में या कहीं और रोककर रखना विधिसंगत नहीं होगा, लेकिन इस धारा की किसी भी बात का उपयोग ऐसे प्रवासी के इनकार या उपेक्षा के कारण या उसके सिलसिले में उस पर जो क़ानूनी, दीवानी या फ़ौजदारी, देनदारियाँ आयद होती हैं उनको किसी भी तरह से कम करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। किसी प्रेसीडेंसी नगर का मजिस्ट्रेट हर उस मुआमले की तुरत-फुरत सुनवाई और उसका फ़ैसला करेगा जो उसके यहाँ उचित और पर्याप्त कारण के बिना जहाज़ पर चढ़ने से इनकार या उसकी उपेक्षा करने वाले प्रवासी के ख़िलाफ़ दायर किया गया हो, और ऐसे हर श्रमिक को दोषी साबित होने पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा-492 (1862) में बताए गये ढंग से, उस धारा में अपराधों के लिए बतलाए गये दण्ड के अनुसार, सज़ा दी जाएगी।[22]

प्रवास-क़ानून में यह धारा (धारा-44) उन प्रवासियों से निबटने के लिए जोड़ी गयी थी जो पर्याप्त कारण के बिना आगे जाने से इनकार या इसे अनदेखा करें, जिसके चलते उनको भारतीय दण्ड संहिता की धारा-492 के अनुसार दण्ड दिया जा सकता था। 1871 में एक नया प्रवास-क़ानून अस्तित्व में आया लेकिन यह क़ानून 1864 के क़ानून में बस एक मामूली-सा संशोधन था।

1870 के दौरान विभिन्न उपनिवेशों के प्रवास के एजेंटों ने 1871 के क़ानून में संशोधन के बारे में ब्रिटिश सरकार को अनेक पत्र भेजे क्योंकि उनको बताया गया था कि पुलिस और मजिस्ट्रेटों द्वारा उनके भर्तीकारों को बराबर परेशान किया और धमकाया जा रहा था। एक और शिकायत यह थी कि अनेकों भावी प्रवासियों ने बस झूठ बोला था और, रोज़गार के लिए या परिवार से मिलने के लिए कलकत्ता की यात्रा करने के वास्ते, भर्तीकारों के ख़र्च पर क़रार के रास्ते का इस्तेमाल करके उपनिवेशों को जाने वाले जहाज़ों पर चढ़ने से ही इनकार कर दिया था।[23] त्रिनिदाद के सरकारी प्रवास एजेंट आर.डब्ल्यू.एस. मिशेल ने 29 नवम्बर, 1876 को लंदन में प्रवास के कमिश्नरों को पत्र लिखा था और इलाहाबाद में तीन भर्तीकारों पर चले मुक़दमे के ब्योरे दिये थे जिन पर शिव प्रसाद नाम के एक लड़के के अपहरण का प्रयास करने का आरोप था।[24] इस मामले में इलाहाबाद के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट ने उन तीन भर्तीकारों को दोषी माना था और उनको भारतीय दण्ड संहिता के तहत छह और दो माह की क़ैद-बामशक़्क़त की सज़ा सुनाई थी। इलाहाबाद में सत्र न्यायालय में अपील के बाद यह सज़ा मंसूख़ कर दी गयी थी और अपीलकार छोड़ दिये गये थे, लेकिन उन्हें एक माह की सज़ा काटनी पड़ी।

---

[21] उपरोक्त. भारत की माननीय लेजिस्लेटिव कौंसिल की समिति और भारत के गवर्नर-जनरल के नाम प्रवास के एजेंटों (ब्रिटिश गुयाना, त्रिनिदाद, मॉरीशस) का 9 फ़रवरी,1864 का पत्र; धारा-41 पर टिप्पणी के लिए : 6 देखें.

[22] उपरोक्त. 1864 के प्रवास-क़ानून सात के विधेयक का आख़िरी मुसव्विरा : 17 देखें.

[23] आर ऐंड ए, एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 41-67, मई 1881 देखें.

[24] उपरोक्त. त्रिनिदाद में प्रवास के सरकारी एजेंट आर.डब्ल्यू.एस. मिशेल का गार्डेन रीच से 15 जून, 1876 को लिखा गया पत्र 634, डाउनिंग स्ट्रीट, लंदन के एमिग्रेशन कमिश्नरों के नाम, परिशिष्ट बी; मुक़दमा सरकार बनाम 1 : सुखारी, 2 : रहमतुल्ला, 3 : ग़ुलाम हुसैन, जिनको इलाहाबाद के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट जे.एम. पियर्स द्वारा इसलिए सज़ा दी गयी थी कि उन्होंने ब्रिटिश भारत से पुदई उर्फ़ शिवप्रसाद नाम

30 नवम्बर, 1876 को मिशेल ने लंदन में प्रवास के कमिश्नरों को पत्र लिखा था कि वे प्रवास-क़ानून 1871 में संशोधन के बारे में अर्ल ऑफ़ कार्नवॉन का ध्यान खींचें। कारण कि क़रार के उल्लंघन पर प्रवास-क़ानून के प्रावधानों (1871 की दफ़ा 45, संख्या-7)[25] और भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं (1860 के क़ानून पैंतालीस की धारा-492)[26] के बीच साफ़ तौर पर एक असंगति देखी जा सकती थी। इसका मक़सद उन प्रवासियों को सज़ा देना था जो प्रवास का इरादा जताकर भर्तीकारों के ख़र्च पर मुफ़्त में रेल से कलकत्ता आते थे और फिर भाग खड़े होते थे।[27] मिशेल ने अपने पत्र में दो बातें कहीं : ऐसे मामलों में हावड़ा के मजिस्ट्रेट के फ़ैसले के हवाले से धारा-45 किस तरह नाकाफ़ी थी और, दूसरे, आम तौर पर जो प्रवासी 'लगभग नंगे-भूखे डिपो में पहुँचते थे और फिर भाग निकलते थे' उनके भोजन-वस्त्र देने पर आये ख़र्चों और दूसरे ज़रूरी ख़र्चों की भारी हानि और बरबादी।[28] प्रवासियों की धूर्तता का संकेत देते हुए उन्होंने 1875-76 के लिए प्रोटेक्टर ऑफ़ एमिग्रेंट्स की सालाना रिपोर्ट का एक अंश उद्धृत किया :

> इन लोगों ने प्रवास के इरादे से नहीं बल्कि प्रवास की एजेंसियों के ख़र्च पर निजी काम से कलकत्ता आने के और फिर यहाँ पहुँचने के बाद, जब भी सुविधा मिले, डिपो से या कहीं और से निकाल भागने के कपटी अभिप्राय से स्वयं को प्रवासी के रूप में दर्ज कराया।[29]

15 दिसम्बर, 1876 को मिशेल ने अर्ल ऑफ़ कार्नवॉन की जानकारी के लिए लंदन के प्रवास कमिश्नरों को एक और पत्र लिखकर अपनी सीमा से बाहर जाकर मजिस्ट्रेटों और पुलिस द्वारा किये गये कार्यों की शिकायत की।[30] उन्होंने शिकमी एजेंटों की यह शिकायत दर्ज की कि वे मजिस्ट्रेट से

के लड़के के अपहरण का प्रयास किया था. उनको भारतीय दण्ड संहिता की धारा-511 और 363 के तहत सज़ाएँ सुनाई गयी थीं. इनमें पहले दो को छह-छह मास क़ैद-बामशक़्क़त की सज़ा सुनाई गयी थी और अंतिम को तीन मास क़ैद-बामशक़्क़त की, क्योंकि इस बात पर 'विचार किया गया था कि वह सिर्फ़ दूसरे क़ैदियों के मुलाज़िम की तरह काम कर रहा' था. उपरोक्त तीनों क़ैदियों को इलाहाबाद के सत्र न्यायाधीश बैरिस्टर-एट-लॉ जे.डब्ल्यू हॉवर्ड द्वारा अपील के बाद 20 अक्तूबर, 1876 को रिहा कर दिया गया था.

[25] 'अगर कोई प्रवासी, प्रवास के एजेंट के पुकारे जाने के बाद, उचित और पर्याप्त कारण के बिना जहाज़ पर चढ़ने से इनकार करता है या उसे अनसुना करता है तो ऐसे प्रवासी को उसकी इच्छा के बिना जहाज़ पर चढ़ने के लिए मजबूर करना या उसे उसकी इच्छा के बिना डिपो में या कहीं और रोककर रखना विधिसंगत नहीं होगा, लेकिन इस धारा की किसी भी बात का उपयोग ऐसे प्रवासी के इनकार या उपेक्षा के कारण या उसके सिलसिले में उस पर जो क़ानूनी, दीवानी या फ़ौजदारी, देनदारियाँ आयद होती हैं उनको किसी भी तरह से कम करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए.'

[26] 'जिस किसी ने भी कारीगर, कामगार या मज़दूर के रूप में ब्रिटिश भारत के अंदर तीन साल से कम अवधि तक काम करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के साथ लिखित विधिसंगत अनुबंध किया है, जिसके तहत उसे उस दूसरे व्यक्ति द्वारा कहीं अन्यत्र भेजा जाना है, वह अगर अनुबंध की अवधि शेष रहते हुए उस दूसरे व्यक्ति की सेवा जान बूझकर छोड़ता है या किसी मुनासिब कारण के बिना सेवा करने से इनकार करता है, तो उसे किसी भी प्रकार की क़ैद का दण्ड दिया जा सकता है जिसकी अवधि एक मास से अधिक नहीं होगी, या उस पर जुर्माना किया जा सकता है जिसकी राशि उस ख़र्च की राशि के दोगुने से अधिक नहीं होगी, या दोनों सज़ाएँ दी जा सकती हैं, बशर्ते मालिक ने उसके साथ दुर्व्यवहार न किया हो या अपनी तरफ़ से अनुबंध के पालन की उपेक्षा न की हो.'

[27] भारत सरकार के लिए महारानी के भारत सचिव, आगे से : भारत सचिव, का डिस्पैच संख्या 53 (पब्लिक-एमिग्रेशन), 17 मई, 1877, होम, आर ऐंड ए, एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 45, मई 1881 देखें.

[28] मुआमला संक्षेप में यह था : त्रिनिदाद के उपनिवेश में जाने के लिए 64 क़ुलियों ने एक क़रार किया और उनका कानपुर में पंजीकरण कराया गया. इसके लिए उनको वहाँ उपनिवेश के ख़र्च पर लाया गया था. उनमें से 41 डिपो जाते हुए रास्ते में ही भाग खड़े हुए. एजेंट ने जब मजिस्ट्रेट के सामने अर्ज़ी दी कि उनको समन या वारंट भेजकर वापस बुलाया जाए तो मजिस्ट्रेट के आदेश में बताए गये कारण से यह अर्ज़ी ख़ारिज कर दी गयी. कारण यह बताया गया कि उन लोगों ने ऐसा कोई अपराध नहीं किया था कि फ़ौजदारी-क़ानून के तहत उनको सज़ा दी जा सके. अनुबंध के उल्लंघन पर सामान्यतः लागू होने वाला क़ानून (भारतीय दण्ड संहिता, धारा-492) केवल ब्रिटिश भारत में सेवा के ठेकेदारों तक सीमित था और 1871 के क़ानून सात की धारा-45 उन पर दो कारणों से लागू नहीं होती थी : पहला, प्रोटेक्टर ने उनको जहाज़ पर सवार होने के लिए आदेश नहीं दिया था और तब तक नहीं दे सकता था जब तक कि उसके सामने अनुबंधों की जाँच और तसदीक़ न हो जाए. दूसरे, इससे संबंधित धारा ऐसे मुआमलों को विशेष रूप से प्रेसीडेंसी नगरों के मजिस्ट्रेटों के अधिकार-क्षेत्र तक सीमित कर देती थी. हावड़ा के मजिस्ट्रेट के फ़ैसले की तफ़सील के लिए होम, आर ऐंड ए, एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 45, मई 1881, परिशिष्ट सी : 7 देखें.

[29] उपरोक्त.

[30] त्रिनिदाद में प्रवास के सरकारी एजेंट आर.डब्ल्यू.एस. मिशेल का गार्डेन रीच, कलकत्ता से 15 दिसम्बर, 1876 को लिखा गया पत्र 999, डाउनिंग स्ट्रीट, लंदन के एमिग्रेशन कमिश्नरों के नाम. इसके लिए भारत सचिव का डिस्पैच संख्या 53 (पब्लिक-एमिग्रेशन), 17 मई,

प्रवास-क़ानूनों के निर्माण पर विचार करने के लिए यह लेख विशेष रूप से कुछ ऐसी धाराओं पर ध्यान देता है जिनसे 'अस्वतंत्रता' की बू आती है, और यह समझने का प्रयास करता है कि प्रवास का अनुबंध क्यों एक दीवानी अनुबंध न होकर एक दण्डमूलक अनुबंध होता था। प्रवास-क़ानून की कुछ मिसालों के आधार पर यह दिखाया गया है कि गिरमिट-क़ानून किस तरह भर्तीकारों की धोखा-धड़ी के ख़िलाफ़ एक ढाल बन गया था।

प्रति-हस्ताक्षर नहीं करा पा रहे थे और इसलिए प्रवासी आगे जाने में असमर्थ थे। उन्होंने 1871 के भारतीय प्रवास-क़ानून सात की धारा-21 की तरफ़ ध्यान खींचा कि 'कोई भी भर्तीकार किसी भी ज़िले में, या कलकत्ता, मद्रास और मुम्बई के किसी भी नगर में, उस ज़िले के मजिस्ट्रेट को या उस नगर के मजिस्ट्रेट को अपना लाइसेंस दिखाए बिना और उस मजिस्ट्रेट का प्रति-हस्ताक्षर लिए बिना मज़दूरों की भर्ती करने की कोशिश नहीं करेगा। ऐसा प्रति-हस्ताक्षर पाने के लिए ज़रूरी है कि उस समय विशेष में वह लाइसेंस वैध हो।'[31]

इसके अलावा उन्होंने कानपुर के चीफ़ मजिस्ट्रेट डेनियल और इलाहाबाद के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट रॉबर्टसन के आदेशों का ज़िक्र किया, जिनका आदेश था कि सभी प्रवासियों को पुलिस के सामने लाकर प्रवास के बारे में उनकी तत्परता की छानबीन की जाए। उनके लिए अपने नाम दर्ज कराना आवश्यक था। पुलिस के लिए आवश्यक था कि वह शिकमी एजेंट के उस घर का दौरा करे जहाँ भावी प्रवासी रह रहे हों और यह देखें कि इस आदेश का पालन किया जा रहा है। रॉबर्टसन के विचार में प्रवास-क़ानून की कोई भी धारा इस कार्यपद्धति की अनुमति नहीं देती थी। यह आदेश प्रवास को तब तक प्रभावित करता रहा जब तक कि कलकत्ता के एडवोकेट जनरल ने इसे ग़ैर-क़ानूनी क़रार नहीं दे दिया। उनका कथन था कि 'पुलिस द्वारा निरंतर जासूसी, जवाबी पूछताछ और सम्भवत: जबरिया धन-वसूली के चलते कलकत्ता में प्रवासियों के प्रोटेक्टर और चिकित्सा निरीक्षक की सावधानी भरी निगरानी और पेशेवर कुशलता के मिलने की सम्भावना कम ही रह जाएगी।'[32] उन्होंने आगे कहा कि 'घरों के ऐसे दौरों का कोई प्रावधान नहीं है जिनका आदेश दिया गया है।'[33] 1871 के क़ानून सात की धारा-3 में 'मजिस्ट्रेट' का मुराद ऐसा कोई भी व्यक्ति हो सकता है जो मजिस्ट्रेट की तमाम शक्तियों का व्यवहार कर रहा हो और जो किसी ज़िला, तहसील या परगने को देख रहा हो।' श्री फुलर इन शक्तियों के अधिकारी नहीं थे बल्कि उनको कानपुर के मजिस्ट्रेट श्री डेनियल द्वारा सौंपे गये थे।

किसी उपनिवेश में जाने का क़रार कर लेने के बाद डिपो जाते हुए रास्ते से फ़रार हो जाने वाले 'कुलियों' के मामले निबटाने के सिलसिले में मौजूदा क़ानून की अपर्याप्तता के सवाल पर बेली ने, जो बंगाल सरकार के सचिव थे, भारत सरकार को रिपोर्ट भेजी कि क़ानून के बारे में मजिस्ट्रेट का विचार सही था।[34] उनकी रिपोर्ट थी कि इसकी वजह 'ब्रिटिश भारत में किसी भी जगह काम करने' के क़रारों पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा-492 को लागू करने की सीमा

1877, होम, आर ऐंड ए, एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 45, मई 1881 देखें.

[31] उपरोक्त.

[32] उपरोक्त.

[33] उपरोक्त.

[34] सचिव, न्यायिक (प्रवास) विभाग, भारत सरकार, राजस्व, कृषि व वाणिज्य, के नाम बंगाल सरकार के सचिव एस.सी. बेली का पत्र, दार्जिलिंग, 1 जून, 1877, होम, आर ऐंड ए, एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 46, मई 1881 : 2, अनुच्छेद-4 देखें.

थी; उन्होंने फ़ौजदारी-क़ानून के दायरे से ऐसे मुआमलों को खुले शब्दों में और इरादतन ख़ारिज कर दिया।[35]

प्रवास विभाग के अधिकारियों का विचार यह था कि भर्तीकारों के रूप में सम्मानित व्यक्तियों को सामने लाना बहुत ही मुश्किल था, और यह कि 'वे लोग एक अविश्वसनीय वर्ग के होते हैं और लोगों को प्रवास के वास्ते प्रेरित करने के लिए वे हर तरह की ग़लत बयानियों और बेजा तरक़ीबों का सहारा लेते हैं।' प्रवासी जब कलकत्ता पहुँचते हैं तब जाकर ही, और उनके क़रार की तसदीक़ के लिए उनको प्रोटेक्टर के सामने लाए जाने पर ही, वे क़रार की वास्तविक प्रकृति को समझ पाते हैं। इसलिए बेली के विचार में सम्भावित सुरक्षा-उपाय सिर्फ़ लाइसेंसशुदा भर्तीकारों की इजाज़त देते थे क्योंकि वे मजिस्ट्रेटों के सामने मज़दूरों के पंजीकरण पर, ज़िले को छोड़ने से पहले उनको उनके क़रारों की जानकारी दिये जाने पर, और प्रेसीडेंसी के प्रोटेक्टर के सामने इस प्रक्रिया के दोहराए जाने पर ज़ोर देते थे।[36]

बेली ने दिखाया कि जहाँ तक क़ानून का सवाल था, प्रोटेक्टर द्वारा अनुबंधों की पुष्टि से पहले और उसके बाद भावी प्रवासियों के रवैयों में स्पष्ट अंतर पाया जाता था। कोई प्रवासी जब तक प्रोटेक्टर के सामने नहीं आता था तब तक अनुबंध अधूरा रहता था और इसलिए दोनों में से कोई भी पक्ष उससे पीछे हट सकता था। एजेंट क़ुली को अस्वीकार कर सकता था या क़ुली जाने से इनकार कर सकता था। ऐसे मामलों में दीवानी कार्रवाई का ही रास्ता रहता था।[37] त्रिनिदाद के एजेंटों की दलील के सबब बंगाल सरकार ने अनुबंध लागू होने के समय के बारे में अपनी राय यूँ रखी :

> मुफ़स्सिल में भर्तीकार के साथ प्रवासी द्वारा किया गया क़रार क़ानून की धारा-35, 36 और 37 के तहत एजेंट पर लागू होता है, क्योंकि वह प्रवासी के अस्वीकार किये जाने की सूरत में या प्रोटेक्टर द्वारा भर्ती को अनुचित या अनियमित समझे जाने की सूरत में उसे उसकी घरवापसी का ख़र्च देने के लिए ज़िम्मेदार हैं। बात सही है, लेकिन क़ानून इस चरण में एजेंट को अनुबंध से न बँधने का विकल्प देता है और एजेंट की ज़िम्मेदारी एक ऐसी ज़िम्मेदारी है जिसे सिर्फ़ दीवानी की कार्रवाई के ज़रिये लागू किया जा सकता है, और कुली के ख़िलाफ़ एजेंट को भी ऐसा ही विकल्प प्राप्त होता है।
>
> प्रोटेक्टर जब अपनी तसल्ली कर लेता है कि प्रवासी को सही ढंग से भर्ती किया गया है, और यह कि कहीं कोई धाँधली नहीं हुई है, तो वह प्रवास के पास पर अपना हस्ताक्षर करता है जो जहाज़ पर चढ़ने के आदेश जैसा ही होता है। इस चरण में अनुबंध स्पष्ट और मुकम्मल हो जाता है और प्रवासी अगर तब सवार होने से इनकार या इसे अनसुना करता है तो वह वैसी ही सज़ाओं का पात्र होता है जो ब्रिटिश भारत के अंदर काम के क़रार को तोड़ने पर धारा-492 के तहत दी जा सकती हैं।
>
> इसमें शक नहीं कि ज़्यादातर मिसालों में क़रार के उल्लंघन पर नुक़सान की भरपाई के लिए भावी प्रवासी पर दीवानी कार्रवाई करने का मतलब यहाँ-वहाँ पैसा फेंकना होता है और इसलिए दीवानी प्रक्रिया का सहारा कभी-कभार ही लिया गया है। फिर भी प्रोटेक्टर की रिपोर्ट से ऐसा लगता है कि कभी-कभार इसका सहारा कामयाबी के साथ लिया गया है,[38] पर स्थिति चाहे जो भी हो, लेफ़्टिनेंट गवर्नर आज क़ानून द्वारा वांछित सभी सुरक्षा उपायों की आवश्यकताओं के बारे में, और ख़ासकर अनुबंध की वास्तविक प्रकृति पर प्रवासी की समझ को लेकर तथा (प्रवासी जब भर्तीकार की पहुँच के बाहर हो तो) उसकी प्रवास की तत्परता को लेकर प्रोटेक्टर की जाँच के बारे में, संतुष्ट हैं।[39]

बंगाल सरकार का तर्क था कि इस स्थिति का कारण यह है कि परिवर्तन स्वयं मुफ़स्सिल में 'अनुबंध के उल्लंघन' के लिए भावी प्रवासी को ज़िम्मेदार बनाए जाने से रोकता है। इस मुद्दे पर

[35] उपरोक्त, अनुच्छेद-5.

[36] उपरोक्त, अनुच्छेद-6.

[37] उपरोक्त, अनुच्छेद-6-7.

[38] तफ़सील के लिए उपरोक्त में : 3 पर बंगाल सरकार के अवर सचिव के नाम प्रवासियों के प्रोटेक्टर डॉ. जे. ग्रांट का पत्र, संख्या 870, कलकत्ता, 24 अगस्त, 1876 देखें.

[39] उपरोक्त, अनुच्छेद-10.

रॉबर्टसन ने, जो पश्चिमोत्तर प्रांत और अवध की सरकार के सचिव थे, यह टिप्पणी की कि ऐसी बहुत सी मिसालें हैं जिनमें भर्तीकार दुराचरण के दोषी पाए गये हैं क्योंकि वे ग़ैर-लाइसेंसशुदा भर्तीकारों यानी कि अरकाटियों का इस्तेमाल करते हैं जबकि मजिस्ट्रेट भर्तीकारों पर प्रति-हस्ताक्षर करने से पहले उनसे उनकी पहचान का सुबूत तलब करता है।[40] हालाँकि रॉबर्टसन की राय में क़ानून मजिस्ट्रेट से ऐसा करने की माँग नहीं करता, पर मज़दूर जमा करने के लिए मातहत लोगों द्वारा अपनाए जाने वाले तरीक़ों के कारण सावधानी के क़दम के तौर पर यह उचित है।[41]

पुलिस की चूक का संज्ञान लेते हुए इस स्थानीय शासन ने राय दी कि स्थानीय डिपो के लिए रवाना होने से पहले भर्तीकारों को कोतवाली में इच्छुक क़ुलियों के नामों और उनकी सहमति की जानकारी देनी होगी। यह बात 'क़ुलियों' को जबरन रोककर रखे जाने की शिकायतों से प्रेरित थी, हालाँकि ऐसी अधिकांश शिकायतें सही नहीं थीं। उसने यह भी कहा कि यह बात भर्तीकारों के हित में, उनको झूठे आरोपों से बचाने के लिए थी। पश्चिमोत्तर प्रांत और अवध की सरकार ने प्रांतीय मजिस्ट्रेटों को हिदायत दी :

> इसे (प्रवास को) बढ़ावा देना उनके हित में है, लेकिन अपने ज़िलों में रहने वाले भोलेभाले और अज्ञानी लोगों को बचाना भी उनकी ज़िम्मेदारी है, और इस बात की बहुत-सी मिसालें मौजूद हैं कि अज्ञानी लोगों को फँसाने के लिए भर्तीकार प्रवास के सम्भावित लाभों के बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं, और अगर आधी रज़ामंदी भी ज़ाहिर की गयी हो तो वे उनको (क़ुलियों को) रोके रखने के लिए उन पर ग़ैर-क़ानूनी दबाव डालते हैं।[42]

विभिन्न अधिकारियों और संबंधित अधिकारियों के जवाबों के बाद भारतीय प्रवास विधेयक-1880, विधि विभाग के सामने पेश किया गया। इस विधेयक ने भारतीय प्रवास-क़ानून 1871 में निम्नलिखित परिवर्तन किये :

> **अध्याय एक :** प्राक्कथन
>
> अनुच्छेद-3 : 'प्रवास' से अभिप्राय भारत के किसी मुल्की का, शुद्ध नौकर के अलावा किसी और रूप में मज़दूरी के एक क़रार के तहत, या इस तरह जाने वाले किसी व्यक्ति के आश्रित के रूप में, समुद्र के रास्ते भारत की सीमाओं से परे, सिवाय लंका द्वीप और जलडमरूमध्य की दूसरी बस्तियों के, किसी देश में जाना है;
>
> 'प्रवासी' से अभिप्राय उपरोक्त परिभाषा के अर्थ में भारत से बाहर जाने वाला कोई मुल्की है और 'प्रवास' से अभिप्राय उपरोक्त परिभाषा के अर्थ में बाहर जाने का कृत्य है।[43]
>
> **अध्याय दो :** अनुच्छेद-7
>
> कौंसिल में पदासीन गवर्नर जनरल को निम्न आधारों पर प्रवास को रोकने का अधिकार है :
>
> (अ) कि उस स्थान पर प्रवासियों की मृत्यु दर बहुत अधिक है;
>
> (ब) कि उस स्थान पर प्रवासियों के पहुँचने के फ़ौरन बाद या वहाँ उनकी रिहाइश के दौरान उनकी सुरक्षा के लिए समुचित क़दम नहीं उठाए गये हैं;
>
> (स) कि भारत से प्रवासियों के चलने से पहले उनसे किये गये अनुबंधों का उस स्थान की सरकार ने समुचित अनुमोदन नहीं किया है;
>
> (द) कि कौंसिल में पदासीन गवर्नर जनरल को, उस स्थान की सरकार से भारतीय प्रवासियों की दशा या उनसे सुलूक़ के बारे में सूचना पाने के लिए लिखे जाने के बाद भी, यह सूचना नहीं मिली है।

---

[40] राजस्व और कृषि [आगे से : रा कृ] एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 52, अगस्त 1883.

[41] भारत सरकार, राजस्व, कृषि व वाणिज्य, के सचिव के नाम पश्चिमोत्तर प्रांत और अवध के कार्यवाहक सचिव सी. रॉबर्टसन का पत्र, संख्या 2404, नैनीताल, 11 अक्तूबर 1877, अनुच्छेद-3 देखें.

[42] उपरोक्त, अनुच्छेद-5.

[43] लायल की टिप्पणी : 18 देखें. रा.कृ., एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 1-10, 18 अक्तूबर, 1873.

[44] लायल की टिप्पणी : 9 देखें.

44

अध्याय तीन : प्रवास के एजेंट

अनुच्छेद-11: प्रवास के एजेंटों की नियुक्ति— स्थानीय सरकार किसी भी समय, जो उसे उचित लगे, इसी प्रकार की अधिसूचना के द्वारा इस धारा के तहत किसी भी किसी व्यक्ति की नियुक्ति पर अपने अनुमोदन वापस ले सकती है, और ऐसी अधिसूचना के दिन से ऐसा व्यक्ति प्रवास का एजेंट नहीं रहेगा।

अध्याय छह : प्रवास के भर्तीकार और शिकमी एजेंट

अनुच्छेद-25 : प्रवास के एजेंट द्वारा हर भर्तीकार को, जिसको उसके प्रार्थनापत्र पर लाइसेंस मिला है, एक लिखित या मुद्रित वक्तव्य, एजेंट की हस्तलिपि में, अनुबंध की उन शर्तों के बारे में दिया जाएगा जिनको उसे भावी प्रवासियों के सामने उस एजेंट की तरफ़ से सामने रखने का अधिकार होगा।

ऐसा वक्तव्य अंग्रेज़ी और मुल्की भाषा दोनों में होगा, या उस स्थानीय क्षेत्र की भाषाओं में होगा जो उस भर्तीकार के लाइसेंस के दायरे में आता है।

उस भर्तीकार को ऐसे किसी व्यक्ति की जानकारी के लिए जिसे वह प्रवास के लिए आमंत्रित करता है, या फिर ऐसे किसी व्यक्ति को पंजीकरण के लिए जिस मजिस्ट्रेट के लिए पेश किया जाए उसके माँगने पर, वह वक्तव्य पेश करना होगा।

अनुच्छेद-26 : भर्तीकार के लाइसेंस पर प्रति-हस्ताक्षर— मजिस्ट्रेट द्वारा (ऐसे) किसी अरकाटी के लाइसेंस पर तब तक प्रति-हस्ताक्षर नहीं किया जाएगा जब तक वह, जैसी भी जाँच वह ज़रूरी समझे उसके ज़रिये, अपनी तसल्ली न कर ले कि लाइसेंस धारक चरित्र में या किसी और आधार पर इस क़ानून के तहत भर्तीकार बनने के लिए अयोग्य नहीं है, कि किसी उचित स्थान पर निवास की पर्याप्त और समुचित व्यवस्था की गयी है और वह प्रवास के इच्छुक ऐसे लोगों के लिए उपयुक्त है जिनको भर्तीकार द्वारा रवानगी के बंदरगाह पर ले जाए जाने के पहले डिपो में जमा किया गया है।

अनुच्छेद-27 : कोई मजिस्ट्रेट अपने मातहत किसी मजिस्ट्रेट को या सब-इंस्पेक्टर की श्रेणी से ऊपर के किसी पुलिस अधिकारी को अधिकार दे सकता है कि वह ऐसे किसी स्थान का दौरा और मुआइना करे, और ऐसे स्थानों की निगरानी कर रहे सभी भर्तीकार या दूसरे व्यक्ति उस मातहत मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी को ऐसे दौरों और मुआइनों के लिए हर सुविधा प्रदान करेंगे।

अनुच्छेद-28 : कुछ मुआमलों में मजिस्ट्रेट प्रति-हस्ताक्षर को रद्द कर सकता है।[45]

1- मजिस्ट्रेट प्रति-हस्ताक्षर करने से इनकार करने या प्रति-हस्ताक्षर को रद्द करने के बारे में प्रवासियों के प्रोटेक्टर को नोटिस देगा।

2- प्रवास का एजेंट किसी व्यक्ति को शिकमी एजेंट नामज़द कर सकता है।

3- स्थानीय शासन ऐसे नामज़द व्यक्ति को शिकमी एजेंट का लाइसेंस प्रदान कर सकता है।

अध्याय आठ : अनुबंधों का सत्यापन और प्रवास का पंजीकरण

अनुच्छेद-39 : मजिस्ट्रेट या प्रोटेक्टर द्वारा अनुबंध के सत्यापन से इनकार का आधार

(अ) कि ऐसा अनुबंध करने वाला प्रवासी उसके या बंदरगाह के अधिकार-क्षेत्र से बाहर के किसी स्थान का निवासी हो और इसका कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण न दिया गया हो कि उस अनुबंध को सत्यापन के लिए वहाँ क्यों प्रस्तुत नहीं किया गया जहाँ का निवासी वह प्रवासी है;

(ब) कि अनुबंध करने वाला प्रवासी ऐसा व्यक्ति हो जिसको फ़ौजदारी-क़ानून की धारा-536 के तहत अपने बीवी-बच्चों के भरण-पोषण का हुक्म दिया जा सके और वह अपने बीवी-बच्चों को पीछे भारत में छोड़ जाने का इरादा कर रहा हो, और उनके लिए उसने ऐसा कोई प्रावधान न किया हो जो मजिस्ट्रेट या प्रोटेक्टर की समझ में उन बीवी-बच्चों के लिए मुनासिब हो;

(स) कि ऐसे किसी अनुबंध में इंगित भावी प्रवासी विवाहित स्त्री हो और उसका पति उसके प्रवास

---

[45] लायल की टिप्पणी : 2.

शकर की वैश्विक अर्थव्यवस्था से उपजने वाले कुछ ऐसे अनुमानिक कारण थे जिन्होंने भारत सरकार की मदद की, जिसने क़रार-प्रथा को ही 1917 में समाप्त कर दिया। तो फिर यह भी हो सकता है कि दास-प्रथा के उन्मूलन के बाद, स्वेन बेकर्ट के 'कपास साम्राज्य' और दास-प्रथा से उसके लम्बे संबंध के बाद, उतना ही महत्त्वाकांक्षी 'शकर का साम्राज्य' खड़ा करने की ज़रूरत पैदा हुई हो। ... गिरमिटियों की कथाओं, उनकी तकलीफ़ों और उनकी 'ख़ुशनसीबियों' ने दुनिया के अनेक हिस्सों में ऐसा ही एक 'सैकेरीन साम्राज्य' खड़ा किया।

पर सहमति न दे रहा हो।

अध्याय चौदह : अपराध

अनुच्छेद-85 : नशा, बलप्रयोग, छलकपट या ग़लतबयानी के ज़रिये जो व्यक्ति भी भारत के किसी मुल्की से प्रवास कराए या इसके लिए प्रेरित करे, या प्रवास कराने या इसके लिए प्रेरित करने का प्रयास करे, या प्रवास के लिए सहमति दिलवाए, या प्रवास के लिए कोई स्थान विशेष छुड़वाए, उसे क़ैद की सज़ा दी जा सकती है जिसकी मुद्दत तीन साल तक हो सकती है, या जुर्माना किया जा सकता है, या दोनों सज़ाएँ दी जा सकती हैं, और कोई भी पुलिस अधिकारी ऐसे अपराधी को वारंट के बिना भी गिरफ़्तार कर सकता है।

अनुच्छेद-86 : जो भी व्यक्ति इस क़ानून के तहत प्रवास का शिकमी एजेंट नहीं है, लेकिन प्रवास के शिकमी एजेंट जैसा कार्य कर रहा हो या इस रूप में नियुक्त किया गया हो, उसे क़ैद की सज़ा दी जा सकती है जिसकी मुद्दत एक साल तक हो सकती है, या जुर्माना किया जा सकता है, या दोनों सज़ाएँ दी जा सकती हैं।

अनुच्छेद-94 : पंजीकरण के बाद भाग जाने वाले या डिपो जाने से इनकार करने वाले प्रवासी के लिए सज़ाएँ— किसी मजिस्ट्रेट द्वारा धारा-38 के तहत पंजीकृत किया गया कोई व्यक्ति अगर डिपो पहुँचने से पहले ही भाग जाता है या डिपो जाने से इनकार करता है तो उस पर जुर्माना आयद किया जा सकता है जो बीस रुपये, या अनुबंध करने और पंजीकरण कराने के या उसे डिपो ले जाने के ख़र्च, जो भी अधिक हो, के बराबर हो सकता है, और ऐसे जुर्माने की अदायगी न किये जाने पर क़ैद की सज़ा हो सकती है जिसकी मुद्दत एक माह तक हो सकती है।

इस धारा के प्रावधानों के तहत वसूल किया गया कोई भी जुर्माना, सज़ा देने वाले मजिस्ट्रेट के विवेक के आधार पर, प्रवास के एजेंट, प्रवास के शिकमी एजेंट या भर्तीकार को, जिसने वह ख़र्च उठाया हो, दिया जा सकता है।

इस धारा के अंतर्गत कोई भी मुक़दमा दायर नहीं किया जाएगा, सिवाय ऐसी शिकायत पर जो प्रवासियों के प्रोटेक्टर द्वारा या उनके निर्देश पर या उनकी अनुमति से दायर की गयी हो; और ऐसी अनुमति तब नहीं दी जाएगी जब प्रोटेक्टर को यह विश्वास होगा कि आरोपी व्यक्ति के साथ या उसके साथ जाने वाले दूसरे भावी प्रवासियों के साथ भर्तीकार द्वारा या उसके मातहत द्वारा दुर्व्यवहार किया गया है, धोखा किया गया है या छल से उसका धन लिया गया हो।[46]

जब यह विधेयक भारत सचिव को भेजा गया तो उसके कुछ प्रावधानों पर एजेंटों या उपनिवेशों के दूसरे प्रतिनिधियों द्वारा अनेक आपत्तियाँ उठाई गयीं, और लंदन ने भारत सरकार को विधेयक को तब तक रोके रखने को कहा जब तक उन उपनिवेशों की सरकारों की राय पता न चल जाए जिनको वह विधेयक भेजा गया था। यह स्थानीय निकायों द्वारा यह जानने और पहचानने के लिए एक मुनासिब अवसर था कि ज़िलों में जारी प्रक्रिया वास्तव में क्या थी, किन-किन ढंगों से उसे सुधारा जा सकता था, प्रवास के बारे में लोगों का रवैया क्या था और उसे और भी लोकप्रिय बनाने की कितनी सम्भावना थी।

[46] भारत सचिव का डिस्पैच संख्या 127, 30 नवम्बर, 1876, और मसविदा डिस्पैच का अनुच्छेद-7 देखें. 1876 के क़ानून तीन की धारा-33 भी देखें.

प्रवास संबंधी नये विधेयक को लम्बित रखे जाने के इसी संदर्भ में भारत सरकार ने प्रांतीय सरकारों को प्रोत्साहन दिया कि वे क़रार की प्रथा पर अपनी राय ज़ाहिर करें। गंगा की वादी में, यानी कि प्रवास के गढ़ में, दो अहम जाँचें शुरू की गयीं। इनसे सामने आने वाली रिपोर्टें इस प्रकार थीं। पश्चिमोत्तर प्रांत में मेज़र डी.जी. पिचर से ग्रहण-क्षेत्र का दौरा करने और प्रवास पर अपनी राय देने को कहा गया। पिचर ने सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह के जवाब दर्ज किये। उन्होंने दिल्ली और बनारस के बीच के इलाक़े में, जो कि कलकत्ता के एजेंटों के लिए भर्ती का सबसे अहम इलाक़ा था, प्रवास के प्रभाव पर महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किये। दूसरी तरफ़ जी.ए. ग्रियर्सन को बंगाल, और ख़ासकर बिहार, के बारे में प्रवास पर एक रिपोर्ट देने को कहा गया। इन रपटों की प्रकृति जाँच वाली थी और अंततः 1883 में जिस रूप में प्रवास-क़ानून सामने आया उसके निर्धारण में उनकी भूमिका रही। यह क़ानून 1916 में क़रारबंद प्रवास के उन्मूलन तक, मामूली फेरबदल के साथ, उसके लगभग सभी पहलुओं को संचालित करता रहा।

1883 के प्रवास-क़ानून का निर्माण

पिचर और ग्रियर्सन, दोनों की रपटों को एक प्रवर समिति के सामने रखा गया। प्रवास-क़ानून में संशोधन के लिए नया विधेयक, जिसके पहले विभिन्न अधिकारियों ने उस पर बहस की, अक्तूबर 1883 में अस्तित्व में आया और भारत के गवर्नर जनरल सी.पी. इलबर्ट ने उस पर हस्ताक्षर किये। इसमें दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण धाराएँ थीं। धारा-93 (1) के अनुसार :

> अगर कोई प्रवासी डिपो पहुँचने से पहले भाग जाता है या किसी मुनासिब कारण के डिपो जाने से इनकार करता है तो उस पर जुर्माना आयद किया जा सकता है जो 20 रुपये, या अनुबंध करने और पंजीकरण कराने के या उसे डिपो ले जाने के ख़र्च, जो भी अधिक हो, के बराबर हो सकता है, और ऐसे जुर्माने की अदायगी न किये जाने पर क़ैद की सज़ा हो सकती है जिसकी मुद्दत एक माह तक हो सकती है। (2) इस धारा के प्रावधानों के तहत वसूल किया गया कोई भी जुर्माना, सज़ा देने वाले मजिस्ट्रेट के विवेक के आधार पर, प्रवास के एजेंट, प्रवास के शिकमी एजेंट या भर्तीकार को, जिसने वह ख़र्च उठाया हो, दिया जा सकता है।
>
> 94 (1) अगर कोई प्रवासी (अ) डिपो में पहुँचने के बाद भाग जाता है या (ब) किसी मुनासिब कारण के बिना प्रवास के एजेंट के कहने के बाद नहीं आगे जाने से इनकार करता है या उसकी बात अनसुनी करता है तो उसे क़ैद की सज़ा दी जाएगी जिसकी मुद्दत एक माह तक हो सकती है या उस पर जुर्माना आयद किया जा सकता है जो पचास रुपये, या अनुबंध करने और पंजीकरण कराने के या उसे डिपो ले जाने के ख़र्च और डिपो में उसके खानपान के ख़र्च का दोगुना, जो भी अधिक हो, के बराबर हो सकता है। (2) इस धारा के प्रावधानों के तहत वसूल किया गया कोई भी जुर्माना, सज़ा देने वाले मजिस्ट्रेट के विवेक के आधार पर, प्रवास के एजेंट, प्रवास के शिकमी एजेंट या भर्तीकार को, जिसने वह ख़र्च उठाया हो, दिया जा सकता है।[47]

'अस्वतंत्रता' की धारणा के सिलसिले में इन दो धाराओं के निहितार्थ इस सम्भावना में निहित थे कि क़ानून में इस संशोधन ने पंजीकृत प्रवासी को औपचारिक रूप से यह 'स्वतंत्रता' दी कि एक मास की क़ैद काटने के बाद वह न चाहे तो जहाज़ पर सवार न हो। अरकाटियों के छलकपट के शिकार किसानों को देर से मिले इस आत्मज्ञान की यह क्या कोई बड़ी क़ीमत थी? अंदरूनी इलाक़ों से तमाम रास्ते चलकर आने वाले ऐसे किसानों को क्या इसका पर्याप्त ज्ञान मिल सकता था कि वे किस तरह से इस रास्ते का इस्तेमाल कर सकते थे जिसमें महीने भर की क़ैद होती थी? क्या कलकत्ता शहर के श्रम-बाज़ार में शामिल होने के लिए कलकत्ता की जेल में एक माह की क़ैद काटना अपना

[47] उपरोक्त.

टिकट कटाने (या टिकट न ख़रीद पाने) और फिर गंगा के रास्ते यात्रा करने के मुक़ाबले कोई बड़ी क़ीमत था? ये ऐसे अनसुलझे सवाल हैं जो नये प्रवास-क़ानून की इन दो धाराओं के सिलसिले में कोई ठोस उदाहरण सामने न होने के कारण बस अनुमान के ही विषय बने रहेंगे।

निष्कर्ष

अनुबंधित-श्रम प्रवास संबंधी क़ानूनों और क़ायदों के निर्माण एवं संशोधन का सवाल दो अहम मुद्दों से जुड़ा हुआ था जिसका सामना उस समय प्रवास की एजेंसियों को करना पड़ रहा था। पहला मुद्दा भर्तीकारों पर धोखाधड़ी और अपहरण के मुक़दमों का था। प्रवास की एजेंसियों के लिए यह साबित करना बहुत ही मुश्किल होता था कि अंदरूनी इलाक़ों से भावी प्रवासियों की भर्ती में, और उनको कलकत्ता तक लाने के दौरान, किसी छलकपट या ग़लत काम का सहारा नहीं लिया गया है। दूसरी तरफ़ प्रवास के एजेंटों ने ऐसे मामले पेश किये जिनमें सत्र न्यायाधीशों ने प्रवासियों को दोषी पाया था लेकिन हाई कोर्ट ने उनको रद्द कर दिया था। मिसाल के लिए शिवप्रसाद उर्फ़ पुदई बनाम सुखारी और दो अन्य भर्तीकारों का मामला।[48]

दूसरा मुद्दा उन नाक़ाबिले-बरदाश्त ख़र्चों का था जो उन लोगों पर आता था जो ज़िलों में उनसे क़रार करते थे और फिर कलकत्ता पहुँचने के बाद मन बदल कर उपनिवेशों के लिए नहीं जाते थे। प्रवास के एजेंटों ने इस बात के साक्ष्य दिये कि अनेक पुरबियों ने, प्रवास एजेंसियों की क़ीमत पर, कलकत्ता पहुँचने के लिए क़रार-प्रथा का इस्तेमाल किया था और उनका इरादा कलकत्ता पहुँचकर बंगाल पुलिस में भर्ती होने का होता था। उसके बाद वे उपनिवेश के लिए जहाज़ पर सवार होने से इनकार कर देते थे। इसके कारण प्रवास एजेंसियों ने बार-बार क़ानून में दो परिवर्तनों की माँग की। पहला, प्रवास के अनुबंध पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद भागने पर नियंत्रण का क़ानून; और दूसरे, उनकी समझ में जो सम्बद्ध आपसी क़रार का संबंध था उसमें बेजा पुलिस हस्तक्षेप पर पूरी तरह रोक न लग सके तो भी उसे सीमित करना। इन मुआमलों के जवाब में प्रवास-क़ानून (1883) ने प्रवासियों के भागने पर नियंत्रण का प्रावधान किया और मौजूदा विधान के क़ानूनी चोर दरवाज़ों के इस्तेमाल में प्रवासियों की निमित्त को उजागर किया।

क़रारबंद समुद्रपारी प्रवास के आरम्भिक वर्षों में अनेक 'दुरुपयोग' सामने आये। लेकिन व्यावहारिक कारणों से, और राजनीतिक कारणों से भी, भारत सरकार ने संचालन की एक ऐसी व्यवस्था बनाने का प्रयास किया जिसने 1883 तक एक बड़ी हद तक इन समस्याओं का शमन किया। भारत में समुद्रपारी काम के लिए भर्ती के विरोधी अधिकारियों के दबाव और ब्रिटेन में दास-प्रथा विरोधी संगठन के दबाव का मतलब एक ऐसा क़ानून बनाना था जो सिर्फ़ प्लांटरों के हितों को प्रतिबिम्बित न करे। समय के साथ संचालन के ढाँचे में अच्छे-ख़ासे परिवर्तन आये। फिर भी कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी की तीसरी चौथाई तक संरक्षण-क़ानून का मुनासिब तौर पर एक ऐसा कारगर ढाँचा वजूद में आ चुका था जो यह सुनिश्चित कर सके कि समुद्रपार प्रवास (भारतीय ग्रामीण मज़दूरों को प्राप्त सीमित अवसरों के दायरे में) अधिकतर 'स्वैच्छिक' हो और, जहाँ तक सम्भव हो, प्रवास की प्रक्रिया के हर चरण में प्रवासियों के अधिकारों और उनकी सुरक्षा का ध्यान रखा जाए। साथ ही साथ, जैसा कि बेट्स और कार्टर का तर्क है, यह बात भी अहम है कि हम श्रम को मर्यादित किये जाने

[48] उपरोक्त : 28-29 देखें. ध्यान देने की अहम बात यह है कि श्रमिकों द्वारा क़ानूनों के चोर दरवाज़ों के दुरुपयोग पर भर्तीकारों ने ढेरों साक्ष्य दिये थे. कई मुआमलों में वे बस झूठ से काम लेते थे और अनेक मुआमलों में अगर किसी को अपने किसी रिश्तेदार से मिलने या कलकत्ता पुलिस में नौकरी पाने के लिए कलकत्ता जाना होता था तो वह भर्तीकारों के ख़र्च पर क़रार के रास्ते का इस्तेमाल करता था और फिर जहाज़ पर सवार होने से इनकार कर देता था. प्रवास के एजेंटों ने बहुत से दूसरे मुआमलों के अलावा रेजीना बनाम सुखारी दास, रहमतुल्ला और ग़ुलाम हुसैन मुआमले की नज़ीर भी पेश की जिनमें अपील करने वाले ग़लत नहीं थे और जिनको निचली अदालत से ग़लत बुनियाद पर सज़ा मिली थी.

[49] सी बेट्स और एम. डी. कार्टर (1995). 'ट्रायबल ऐंड इंडेंचर्ड माइग्रेंट्स इन कोलोनियल इंडिया : मोड्स ऑफ़ रिक्रूटमेंट ऐंड फ़ॉर्म्स ऑफ़ इनकॉरपोरेशन, पीटर रॉब (सं.), *दलित मूवमेंट्स ऐंड द मीनिंग ऑफ़ लेबर इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

संबंधी द्वैतवादी बहस में न फँसें।[49] जो एक आदमी का व्यापार करने वाला है वह ज़रूरत पड़ने पर किसी दूसरे का मित्र और मददगार भी हो सकता है। जिसके सिलसिले में अपहरण की रिपोर्ट की गयी है वह किसी दूसरे परिप्रेक्ष्य में पुरुषप्रधान समाज के नियंत्रण से भागी हुई कोई स्त्री भी हो सकती है।[50] और जो चीज़ प्लांटरों और अधिकारियों को प्रवास की व्यवस्था के अंदर 'दुरुपयोग' और 'चोर दरवाज़ा' नज़र आ सकती है वह अकसर प्रवासियों को इसके अवसर भी देती रही होगी कि वे औपनिवेशिक व्यवस्था के कोनों-कुतरों में अपने एजेंटों पर काम कर सकें।

राचेल स्टर्मन ने तर्क दिया है कि भारतीय श्रमिकों के समुद्रपारी प्रवास का नियमन अंत-उन्नीसवीं सदी तक दुनिया भर में कहीं भी श्रमिकों से अनुबंधों की और उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा के नियमन की सबसे व्यापक व्यवस्थाओं में एक बन चुका था। इसने बीसवीं सदी के दौरान अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के तत्वावधान में, 1920 से ही, श्रमिक-अधिकारों की अभिव्यक्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण का काम किया।[51] लेकिन अजीब बात यह है कि स्टर्मन का विश्लेषण भारत के दस्तावेज़ी मामलों के विश्लेषण से (जब कि वे प्रवास संबंधी अभिलेखागार के एक महत्त्वपूर्ण भाग हैं) कतराता हुआ नज़र आता है। जैसा कि ऊपर हमारे विश्लेषण से स्पष्ट है, ऐसा कोई भी विश्लेषण विशिष्ट क़ायदों-क़ानूनों के तक़ाज़े करने वाली तत्कालीन स्थिति के विश्लेषण के लिए आवश्यक है। लेकिन इसे छोड़ दें तो भी बलप्रयोग / निमित्त की बहस में जिस विचारणीय प्रश्न को अकसर किनारे किया गया है, वह यह है कि, एक अर्थ में, खेतों में पसीना बहा रहे मुल्की लोगों के कल्याण की बात करते हुए भारत की औपनिवेशिक सरकार ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर तक के गन्ना टापुओं में भी एक सीमित अवधि के लिए क़रारबंद मज़दूर ही भेजने के लिए क्यों चिंतित रहती थी।[52]

अगर, जैसा कि सिडनी मिंट्ज़ ने सुझाया है, शकर की वैश्विक अर्थव्यवस्था से उपजने वाले कुछ ऐसे अनुमानिक कारण थे जिन्होंने (निरंतर राष्ट्रवादी

Conditions of Service.

Period of Service.
Five years.

Nature of Labor.
Agriculture, or mines.

Number of days in which the Emigrant is required to work in each week.
Six days in the week, Sundays and Holidays excepted.

Number of hours in each day during which the Emigrant is required to labor without extra remuneration.
Nine hours between sunrise and sunset.

Monthly or daily wages or task work rates.
Besides free rations
For men of 18 and upwards minimum rate as follows:—

			Rs.		
First year	10 shillings	monthly equal to	8	0	0.
Second "	11	" " "	9	0	0.
Third "	12	" " "	10	0	0.
Fourth "	13	" " "	11	0	0.
Fifth "	14	" " "	12	0	0.

Adult males working at the mines will receive two shillings extra per month for working on the surface and five shillings extra per month for working under ground in addition to the above wages and rations.
The women are paid half wages & minors in proportion.

Other conditions if any.
Free house to live in and medical attendance.
Ration for an adult as mentioned below.
1½ lbs. (4½ ollocks) of rice daily, or for 3 days i[n] week, in lieu of rice, 2 lbs. (5½ ollocks) of maize [me]al.

Doll	2 lbs. (5¼ ")	per mont[h]
Salt	1 lb. (2¾ ")	"
Salt fish	2 lbs. (26½ polls.)	"
Ghee or oil	1 lb. (13¼ ")	"

Immigrants under 12 years of age will receive three-fourths of the above rations.

Conditions as to residence in Natal and return Passages to India.
The Emigrant shall be entitled to a free return passage to India after having completed a residence of five years in Natal of industrial service under indenture. The Emigrant shall not leave Natal without a written license, no license to leave the Colony shall be granted to any Emigrant who has not completed five years residence in Natal unless under a written order of the Indian Immigration Trust Board for his or her return to India.

After the expiration or other determination of the contract the Emigrant shall either return to India or remain in Natal under indentures to be from time to time entered into: Provided that each term of new indentured service shall be for two years. And provided further, that the rate of wages for each year of indentured service after that provided by this contract shall be 16s. per month for the first year, 17s. per month for the second year, 18s. per month for the third year, 19s. per month for the fourth year, and 20s. per month for the fifth and each succeeding year.

Every Indian desiring to return to India on the expiry of the first or any subsequent period of his service under any contract of indenture or re-indenture entered into under the Laws for the time being in force, shall be provided by the Indian Immigration Trust Board with a free passage to India.

Any Indian Immigrant who may have entered into the covenant set out in Section 2 of this Act, shall be at liberty, subject to the approval of the Protector of Indian Immigrants, to choose the employer to whom he shall be indentured after his first term of service and for the purpose of making such choice the Indian Immigrant shall be entitled to a pass for one month to be issued by his last Employer, or should the Employer refuse such pass, then by the Magistrate of the District.

During all the period of re-indenture each Indian Immigrant entering into such further indenture shall have all the rights and privileges which he had during his first term of indenture.

Every indentured Indian who shall have entered into the covenant set out in Section 2 of this Act and who shall fail, neglect, or refuse to return to India or to become re-indentured in Natal shall take out year by year a pass or license to remain in the Colony to be issued by the Magistrate of his District, and shall pay for such pass or license a yearly sum of Three Pounds Sterling.

कब तक काम करना होगा।
पाँच बरस।
क्या काम करना होगा।

کب تک کام کرنا هوگا
پانچ برس
کیا کام کرنا هوگا

I agree to accept the person named on the face of this form as an Emigrant on the above conditions.

In my presence

गिरमिटियों की सेवा-शर्तों का दस्तावेज़

[50] भागने वाली ऐसी स्त्री के एक सूक्ष्मभेदी चित्र के लिए अमिताव घोष के उपन्यास *सी ऑफ़ पॉपीज़* में दीति का चरित्र देखें.

[51] ऊपर टिप्पणी 8 देखें.

[52] औपनिवेशिक भारत में किसानों की काश्तकारी के बारे में पार्थ चटर्जी, (1984).

दबाव से दो–चार होने के बाद) भारत सरकार की मदद की, जिसने क़रार-प्रथा को ही 1917 में समाप्त कर दिया। तो फिर यह भी हो सकता है कि दास–प्रथा के उन्मूलन के बाद, स्वेन बेकर्ट के उल्लेखनीय 'कपास साम्राज्य' और दास–प्रथा से उसके लम्बे संबंध के बाद, उतना ही महत्त्वाकांक्षी 'शकर का साम्राज्य' खड़ा करने की ज़रूरत पैदा हुई हो। गंगा की वादी के गिरमिटियों की कथाओं, उनकी तकलीफ़ों और उनकी 'ख़ुशनसीबियों' ने दुनिया के अनेक हिस्सों में ऐसा ही एक 'सैकेरीन साम्राज्य' खड़ा किया।[53]

संदर्भ

क्रिस्पिन बेट्स और मरीना कार्टर (1995), 'ट्रायबल ऐंड इंडेंचर्ड माइग्रेंट्स इन कोलोनियल इंडिया : मोड्स ऑफ़ रिक्रूटमेंट ऐंड फ़ॉर्म्स ऑफ़ इनकॉरपोरेशन', पीटर रॉब (सं.), *दलित मूवमेंट्स एंड द मीनिंग ऑफ़ लेबर इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

जियोगेगेन रिपोर्ट, *ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स,*1874 (314).

पार्थ चटर्जी (1984), *बंगाल 1920–1947 : द लैंड क्वेश्चन,* के.पी. बागची ऐंड कम्पनी, कलकत्ता.

पीटर रॉब (1993), 'इंट्रोडक्शन : मीनिंग्ज़ ऑफ़ लेबर इन इंडियन सोशल कांटेक्स्ट', पीटर रॉब (सं.), *दलित मूवमेंट्स ऐंड द मीनिंग ऑफ़ लेबर इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

प्रभु महापात्र (2005), 'रेगुलेटिंग इनफ़ॉर्मिलिटी : लीगल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ लेबर रिलेशंस इन कोलोनियल इंडिया, 1814–1926', इयान ल्यूकासन और सब्यसाची भट्टाचार्य (सं.),*वर्कर्स इन द इनफ़ार्मल सेक्टर : स्टडीज़ इन लेबर हिस्ट्री, 1800–2000,* नयी दिल्ली.

बसुदेव मँगरू (1987), *बेनेवॅलेंट नोबिलिटी : इंडियन गवर्नमेंट पॉलिसी ऐंड लेबर माइग्रेशन इन ब्रिटिश गुयाना, 1834–1884,* हैंसिब, लंदन.

माइकेल ऐंडरसन (1993), 'वर्क कांस्ट्रूड : आइडियॉलॅजीकल ओरिजिंस ऑफ़ लेबर लॉ इन ब्रिटिश इंडिया', पीटर रॉब (सं.), *दलित मूवमेंट्स ऐंड द मीनिंग ऑफ़ लेबर इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

मॉरीशस राष्ट्रीय अभिलेखागार.

राचेल स्टर्मन (2014), 'इंडियन इंडेंचर्ड लेबर ऐंड द हिस्ट्री ऑफ़ इंटरनैशनल राइट्स रिजीम्स', द *अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू,* खण्ड 119, अंक 5.

रॉबर्ट जे. स्टाइनफ़ेल्ड (2003), 'कोअर्शन, कांट्रेक्ट ऐंड फ्री लेबर इन द नाइंटीथ सेंचुरी : अ रिप्लाई', *बफ़ैलो लॉ रिव्यू,* अंक 5.

स्वेन बेकर्ट (2014), *इम्पायर ऑफ़ कॉटन : अ ग्लोबल हिस्ट्री,* अल्फ्रेड ए. नॉफ़, न्युयॉर्क.

शाहिद अमीन (1984), *शुगरकेन ऐंड शुगर कल्टीवेशन इन गोरखपुर : एन इनक्वायरी इन टू पीज़ेंट प्रोडक्शन फ़ॉर कैपिटलिस्ट इंटरप्राइज़ इन कोलोनियल इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

[53] स्वेन बेकर्ट (2014).